E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2022; 4(1): 185-187
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 11-02-2022
Accepted: 18-03-2022

अरुण कुमार
शोधार्थ, राजनीति विज्ञान विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
अरुण कुमार
शोधार्थ, राजनीति विज्ञान विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सरना : धर्म व राजनीति के मध्य अस्मिता का संकट

अरुण कुमार

सारांश
सैद्धांतिक रूप में भारत का संविधान इसके सभी नागरिकों को वे समस्त लोकतांत्रिक अधिकार देता है जो किसी उदार लोकतंत्र में अपेक्षित होते हैं। यद्यपि अधिकारों की उपलब्धता तथा उसकी उपादेयता के मध्य जिस प्रकार का द्वंद्व है उसकी परिणति भारत में निरंतर सामाजिकए सांस्कृतिकए भाषायीए पांथिकए जातीय एवं जातिगत संघर्षों की उपस्थिति के रूप में दिखाई देती है। इसी प्रकार का एक संघर्ष भारतीय राज्य तथा भारतीय समाज की परिधि पर खड़े आदिवासी समाज के मध्य देखा जा सकता है। जिनकी मांग है कि भारत के समस्त प्रकृति-पूजक आदिवासियों को एक पृथक ष्सरना धर्मष् के रूप में मान्यता दी जाए। दूर से इस संघर्ष की प्रकृति वैसे तो जातीय तथा पांथिक अधिक दिखाई देती है। परंतु नजदीक से देखने पर यह संघर्ष अस्मिता एवं आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए राज्य से सीधा संवाद करता दिखाई देता हैए जिससे इस समाज की समस्त माँगें तथा अपेक्षाएँ है। दूसरी ओर गैर-राजकीय तत्व भी हैं जो अपनी वैचारिक प्रतिबद्धताओं के वशीभूत होकर इनकी पसंद-नापसंद जाने बिना इन्हें अपने पाले में करने को आतुर दिखाई दे रहे हैं।

मूल शब्द: लोकतंत्र, अधिकार, अस्मिता, संघर्ष, आत्मनिर्णय

प्रस्तावना
भारत का लोकतंत्र संविधान-सम्मत व्यवस्था पर आधारित है। इस व्यवस्था में स्वयं संविधान नागरिकों की अस्मिता का एक बड़ा स्रोत है परंतु यही संविधान भारत के आदिवासियों के विषय में मौन है। यह अपने भीतर आदिवासी शब्द को सम्मिलित नहीं करता, अपितु इसके स्थान पर अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 342 भारत में अनुसूचित जनजातियों के निर्धारण को स्पष्ट करता है, जिसमें यह शक्ति राष्ट्रपति को दी गई है कि वह अनुसूचित जनजातियों को अधिसूचित करे। इसी के भाग-2 के अनुसार संसद विधि द्वारा किसी जनजाति को अनुसूचित जनजाति में सम्मिलित कर सकता है अथवा हटा सकता है। यद्यपि ऐसा किए जाने के पीछे भूमि, प्राकृतिक संसाधनों अर्थात जल, जंगल तथा जमीन पर इनके विशिष्ट अधिकारों को संरक्षित करने का तर्क दिया जाता है। परंतु आदिवासियों तथा जनजातियों के मध्य यह शाब्दिक पृथक्करण उनकी स्थिति को भी पृथक करता दिखाई देता है। प्रथमा बनर्जी अपने लेख में इन दोनों के मध्य अंतर बताती हैं कि झारखंड एवं छत्तीसगढ़ में समुदायों ने जनजाति के स्थान पर आदिवासी को अधिक सकारात्मक पहचान के रूप में स्वीकार करते हैं जबकि पूर्वोत्तर के राज्यों में आदिवासी शब्द मध्य भारत से वहाँ विस्थापित हुए लोगों के लिए प्रयोग में लाया जाता है। आदिवासी शब्द की एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है जो उन्हें भारत की सांस्कृतिक प्राचीनता के साथ जोड़ती है तथा उनके सांस्कृतिक अधिकारों को सुनिश्चित करती है। इसके विपरीत जनजाति राज्य की प्रशासनिक अभिव्यक्ति है जो राजकीय सुविधा को ध्यान में रखती है।

आदिवासी के स्थान पर जनजाति शब्द का प्रयोग राज्य को उनके सांस्कृतिक अधिकारों के प्रति उदासीन बनाता है, क्योंकि यह इन्हें मात्र कुछ संवैधानिक प्रावधानों के अधीन कर देता है। परंतु इस लेख में हम आदिवासी शब्द का ही प्रयोग कर रहे हैं, क्योंकि यह लेख सांस्कृतिक अस्मिता के लिए किए जा रहे संघर्ष को सामने लाता है। इसके माध्यम से सरना धर्म कोड के जरिये धार्मिक स्वतंत्रता तथा आत्मनिर्णय के अधिकार से संबंधित विमर्श व विरोध को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

भारत के विभिन्न राज्यों में रहने वाले आदिवासी समूहों में से एक बड़ी संख्या ऐसे समूहों की है जो प्रकृति के उपासक हैं। उनके समस्त धार्मिक कर्मकाण्ड 'जल,जंगल और ज़मीन' की उपासना से ही सम्पन्न होते हैं। ऐसे जनजातीय समूह स्वयं को सरना धर्म के साथ सम्बद्ध करते हैं। झारखंड में प्रवेश करते ही आपका परिचय कुछ ऐसे प्रतीकों से होता है जो आपको उसके सांस्कृतिक वैशिष्ट्य से परिचित कराते हैं। इन प्रतीकों में आगंतुकों के स्वागत के लिए 'जोहार' का सम्बोधन, अधिकांश घरों के बाहर या उनकी छतों पर लगा 'तीरा झंडा' प्रमुख रूप से देखे जा सकते हैं। ये प्रतीक ना केवल सरना मत के लोगों की संस्कृति के परिचायक हैं अपितु इनके माध्यम से उनके आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग को भी देखा जा सकता है जो पृथक सरना धर्म कोड के रूप में अभिव्यक्त होती है।

एक अनुमान के अनुसार 2011 की जनगणना में 40,75,246 आदिवासियों ने अपना धर्म सरना दर्ज कराया था। इनका मानना है कि पूरे भारत में सरना मत को मानने वाले लोगों की संख्या 12 करोड़ से अधिक है। परंतु इनकी इस पृथक पहचान को ना तो राज्य द्वारा स्वीकृत किया जाता है तथा ना ही बहुसंख्यक हिंदू समाज इन्हें स्वयं से पृथक होने की अनुमति देता है। जबकि इनके रीति-रिवाज, धार्मिक कर्मकाण्ड सनातन हिंदू समाज से पृथक हैं।

सरना शब्द की उत्पत्ति साल वृक्ष से ही हुई है जो इस धर्म का एक पवित्र वृक्ष है। हिंदू धर्म के विपरीत सरना के अनुयायी किसी प्रकार की मूर्ति, मंदिर आदि से नहीं जुड़े होते अपितु ये प्रकृति पूजा में विश्वास रखते हैं जिनके लिए 'जल, जंगल और ज़मीन' महत्वपूर्ण है। ये भूमि, वृक्षों तथा पर्वतों की उपासना करते हैं, जंगलों के संरक्षण में विश्वास करते हैं। इनके द्वारा मुख्य रूप से साल, पीपल तथा बड़ के वृक्ष की पूजा की जाती है। 'सरहुल' (साल की पूजा) इनका वार्षिक तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण पर्व होता है जो कृषि के साथ जुड़ा हुआ है। इनकी मान्यता है कि सरहुल पूजा किए बिना ना तो किसी भी प्रकार का कृषि कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है तथा ना ही नई फसल का व पेड़ों के पत्तों, फूलों, व फलों का उपयोग किया जा सकता है। सरना मत के अनुयायी मानते हैं कि हिन्दू धर्म के साथ कुछ समानताएँ होने के कारण इन्हें हिंदू माना जाता है, जो कि सही नहीं है। इसके अतिरिक्त इनकी आपत्ति इस बात को लेकर भी है कि पृथक धार्मिक पहचान ना होने के कारण इन्हें हिंदू तथा ईसाई संगठनों द्वारा निरंतर अपने-अपने धर्म में जबरन मतांतरित करने का प्रयास किया जा रहा है,जिसके कारण इनकी संख्या प्रभावित हो रही है।

बहुसांस्कृतिक भारतीय समाज में 'विभिन्नता में एकता' का नारा हमेशा से लोकप्रिय रहा है। भारत की सामासिक संस्कृति के गढ़न में इस नारे की बड़ी भूमिका दिखाई देती है। इतिहास की ओर देखें तो ज्ञात होता है कि भारत आने वाले विदेशी यात्रियों—मेगस्थनीज, फ़ाह्यान, ह्वेंसांग, अलबरूनी, मार्कोपोलो, इब्नबतूता आदि ने भी भारत की अपनी व्याख्या में इस विशेषता का विस्तृत वर्णन किया है। इस विविधता में एक महत्वपूर्ण हिस्सा भारत में रहने वाले उन आदि-धर्मों का भी है जिन्हें सामान्य भाषा में आदिवासी कहते हैं। ये आदिवासी अपने को भारत का मूल निवासी मानते हैं जो सनातन धर्म/हिंदू धर्म से भी पुराना है। इनकी एक विशिष्ट जीवन शैली, रीति-रिवाज, मान्यताएँ है जिनके आधार पर इनकी पहचान की जाती है। यद्यपि इनमें से अधिकांशतः सरना धर्म को मानते हैं परंतु इनकी एक बड़ी संख्या ईसाई मत में मतांतरित हो चुकी है। वहीं दूसरी ओर भारत का बहुसंख्यक हिंदू समाज ईसाई धर्म-प्रचारकों की गतिविधियों का विरोध करते हुए सरना को हिंदू धर्म का ही अंग मानता है। दो धार्मिक समुदायों के मध्य संघर्ष की यही स्थिति इन आदिवासी समूहों में अपनी 'विशिष्ट अस्मिता' को बचाने के लिए पृथक कोड की मांग का आधार प्रदान करती है।

भारत के पूर्वी राज्यों के आदिवासियों द्वारा 1990 के दशक से ही पृथक सरना धर्म कोड को लागू किए जाने की मांग की जाती रही है। इसके अंतर्गत इनकी मांग है कि भारत के आदिवासी समाज को हिन्दू धर्म से पृथक करते हुए सरना धर्म के रूप में मान्यता दी जाए तथा प्रत्येक 10 वर्ष में होने वाली वाली जनगणना में धर्म वाले कॉलम में अन्य धर्मों के साथ सरना भी एक विकल्प दिया जाए। झारखंड सरकार द्वारा नवंबर 2020 में पृथक सरना धर्म कोड से संबन्धित प्रस्ताव को बहुमत के साथ पारित कर दिया गया। यद्यपि इसे अंतिम रूप से केंद्र सरकार की स्वीकृति अनिवार्य होगी, परंतु राज्य सरकार के इस कदम ने भारत के राजनीतिक दलों तथा धार्मिक संगठनों के मध्य एक बार फिर धार्मिक स्वतंत्रता तथा आत्मनिर्णय के अधिकार के विषय पर विमर्श एवं विरोध उत्पन्न कर दिया।

सरना आंदोलन के विमर्श व विरोध को मतांतरण की राजनीति से पृथक करके देखना उचित नहीं होगा। क्योंकि इस आंदोलन के विरोध या समर्थन का मूल कारण ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा किया जा रहा मतांतरण तथा हिंदूवादी संगठनों द्वारा मतांतरण का विरोध ही है। झारखंड के आदिवासियों द्वारा पृथक सरना धर्म कोड के लिए की जा रही मांग का भारत के दक्षिणपंथी व्यक्तियों व संगठनों द्वारा निरंतर विरोध किया जाता रहा है। इन संगठनों द्वारा इसे हिंदू धर्म के संकट के रूप में प्रदर्शित किया जा रहा है। विश्व हिन्दू परिषद के अनुसार सरना धर्म कोड के लिए जो आंदोलन चलाया जा रहा है उसे ईसाई मिशनरियों का आर्थिक सहयोग तथा बौद्धिक समर्थन प्राप्त हो रहा है। उनका मानना है कि इस आंदोलन का उद्देश्य भारत के आदिवासी समुदाय को हिंदू धर्म से पृथक करके ईसाईयत के प्रभाव में लाना है। यद्यपि हिंदू संगठनों द्वारा किया जाने वाला यह दावा निराधार भी नहीं है। झारखंड के विभिन्न जिलों में ईसाई मिशनरी जिस प्रकार से कार्य कर रहे हैं उसे देखते हुए सरना धर्म कोड की मांग पर संदेह किया जा सकता है। झारखंड में किए गए एक क्षेत्र अध्ययन के अनुसार ईसाई समुदाय के लगभग 90 प्रतिशत लोगों ने यह स्वीकार किया कि वे अथवा उनके पूर्वज सरना थे तथा मतांतरित होकर ईसाई बने हैं। मिशनरियों द्वारा दिये गए प्रलोभनों के कारण वे ईसाई मत की ओर आकर्षित हुए। इन प्रलोभनों में आर्थिक सहायता, सामाजिक मान्यता, शैक्षणिक प्रलोभन आदि सम्मिलित है। आदिवासियों पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की एक रिपोर्ट में यह दावा किया गया है कि ईसाई मिशनरी तथा वामपंथी संगठन भारत के 12 करोड़ आदिवासियों को पृथक सरना धर्म कोड के लिए उकसा रहे हैं। जिससे की वे आदिवासी 2021 की जनगणना में स्वयं को सरना, कबीरपंथी, कृष्णपंथी आदि लिख सकें। यही कारण है कि यदि भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों को छोड़ दिया जाए तो देश में सर्वाधिक ईसाई आबादी वाला जिला सिमडेगा (झारखंड) है। जहां 2011 की जनगणना के अनुसार 51 प्रतिशत लोग ईसाई धर्म को मनाने थे। सिमडेगा के पल्ली पुरोहित के अनुसार वर्तमान में यह आंकड़ा 60 प्रतिशत से अधिक है। इसके साथ ही गुमला, लोहरदगा, खूंटी में 25-30 प्रतिशत लोग ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके हैं।

हिंदू संगठनों द्वारा सरना धर्म कोड के विरोध का एक कारण यह भय भी है कि यदि सरकार द्वारा इस मांग को मान लिया जाता है और सरना को एक पृथक धर्म के रूप में मान्यता मिल जाती है तो इससे वृहत हिंदू समाज में पृथकतावादी प्रवृत्तियों को बल मिलेगा। हिंदू समाज के भीतर विभिन्न मतों के अनुयायी भी पृथक धर्म की मांग करने लगेंगे। और यदि ऐसा हुआ तो भारत में बहुसंख्यक हिंदू समाज अल्पसंख्यक हो जाएगा, जो हिंदुत्व तथा हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिए अनुकूल नहीं है। उदाहरण के लिए, भारत का दलित समाज, जो अभी तक हिंदू धर्म को मानता आया है, भी विभिन्न अवसरों पर पृथक रविदासिया धर्म की मांग करता देखा गया है। सरना की भांति इनकी मांग भी है कि 2021 की जनगणना में रविदासिया धर्म को पृथक विकल्प के रूप में सम्मिलित किया जाए। इस प्रकार की मांगें हिंदू समाज के लिए बड़ा संकट हैं तथा सरना आंदोलन की सफलता इस प्रकार के कई अन्य आंदोलन खड़े कर सकती है।

दूसरी ओर ईसाई धर्म- प्रचारकों द्वारा निरंतर जबरन अथवा प्रलोभन द्वारा मतांतरण, तथा सरना आंदोलन के नेतृत्व करने के आरोपों का खंडन किया जाता रहा है। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि पृथक सरना धर्म कोड को चर्च नैतिक समर्थन देता है, जिसका आधार संविधान में दिया गया धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार है। परंतु ईसाई धर्म-प्रचारक इस आंदोलन का नेतृत्व नहीं करते। इसका नेतृत्व सरना आदिवासियों द्वारा ही किया जाता है। उनके अनुसार भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों ने सदैव ही यहाँ के निम्न वर्गीय समुदाय की सहायता की है। प्रारम्भ में उन्होने निर्धन व भूमिहीन कृषकों के लिए जमींदारों व साहूकारों के विरुद्ध न्यायिक सुरक्षा सुनिश्चित करने का कार्य किया। बाद में इनके द्वारा शिक्षा तथा चिकित्सा के क्षेत्र में भी कार्य प्रारम्भ किया गया। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई जिसमें उन क्षेत्रों के लोगों के लिए उन्नत आधुनिक शिक्षा का प्रबंध किया गया। झारखंड में सिमडेगा जिला के संत अन्ना महागिरजाघर (केथेड्रल) के मुख्य पादरी के अनुसार हम 'एक स्कूल-एक चर्च' की नीति के साथ कार्य करते हैं। इसका उद्देश्य स्थानीय लोगों को आधुनिक शिक्षा देना तथा ईसाईयत के मूल्यों से परिचित कराना होता है। इससे प्रभावित होकर यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से ईसाई धर्म में मतांतरित होने चाहे तो ही उसे मतांतरित किया जाता है। परंतु मतांतरण के पश्चात भी उसे अपनी परम्पराओं व प्रथाओं का पालन करने का पूरा अधिकार दिया जाता है अर्थात वह ईसाई बनने के बाद भी सरना से जुड़े रीति-रिवाजों का पालन कर सकता है। इस संबंध में उस पर किसी प्रकार का कोई दबाव नहीं डाला जाता।

उपरोक्त पक्ष-विपक्ष के अतिरिक्त मतांतरण का एक तीसरा पक्ष ग्रामीण

आदिवासियों द्वारा बताया गया। उनका कहना था कि हिंदू धर्म की सोपानिक व्यवस्था में उच्च-वर्गीय हिंदू समाज द्वारा निरंतर उनके प्रति घृणित व्यवहार तथा तिरस्कार ने उन्हें हिंदू धर्म से विमुख किया। यह तिरस्कार तथा घृणा आज भी हिंदू समाज में विद्यमान है इसलिए वे वापस उस व्यवस्था में जाने के इच्छुक नहीं हैं। परंतु वे यह भी मानते हैं कि ईसाई मत को अपनाकर भी इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं देखा जा सका है। दूसरी ओर मतांतरित होने के पश्चात इन्हें अपने मूल समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। ऐसे में ईसाई समाज में आंशिक व सीमित स्वीकारोक्ति तथा अपने समाज से बहिष्करण की अवस्था में इनके समक्ष अस्मिता का संकट उत्पन्न होता दिखाई देता है। इस स्थिति ने इस समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता को धर्म व राजनीति के बाजार का उत्पाद बना दिया है। अस्मिता के इसी संकट ने भारत के आदिवासी समाज में स्व-हित के प्रति चेतना विकसित करने का कार्य किया, जिसकी परिणति सरना धर्म कोड के रूप में पृथक धर्म की मांग के रूप में देखी जा सकती है।

2014 के पश्चात भारत के अनेक राज्यों में मतांतरण विरोधी कानून लागू किए गए हैं। ये कानून भय, प्रलोभन व जबरन मतांतरण का निषेध करते हैं तथा ऐसा होने की स्थिति में कानूनी कार्यवाही का प्रावधान करते है। परंतु सरना धर्म कोड के विरोध का कारण जितना जनसांख्यिकीय तथा धार्मिक है, उससे कम राजनीतिक भी नहीं है। झारखंड के विभिन्न जिलों में किए गए सर्वेक्षण के माध्यम से आदिवासी समुदाय के राजनीतिक व्यवहार पर चर्च तथा हिन्दू संगठनों का प्रभाव आँकने का प्रयास भी किया गया। इसके माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि ये संगठन चुनावों के दौरान इन आदिवासियों के राजनीतिक व मत व्यवहार को बड़े स्तर पर प्रभावित करते हैं। इस संबंध में एकत्रित किए गए आंकड़ों में 64 प्रतिशत ईसाई मतदाताओं ने यह स्वीकार किया कि चुनाव के दौरान चर्च तथा ईसाई धर्म-प्रचारक किसी विशिष्ट राजनीतिक व्यक्ति अथवा दल को समर्थन देने के लिए अपील करते हैं। इसके अतिरिक्त 91 प्रतिशत लोगों ने यह स्वीकार किया कि चर्च के धर्मगुरु अथवा धर्म-प्रचारकों की किसी व्यक्ति अथवा दल विशेष को समर्थन देने की अपील को वे स्वीकार करते हैं। इसे एक प्रकार से एन ब्लॉक मतदान के रूप में समझा जा सकता है, जहां एक वर्ग अथवा समुदाय एकजुट होकर किसी के पक्ष या विपक्ष में मतदान करता है। चूंकि चर्च द्वारा राज्य में बीजेपी का निरंतर विरोध किया जाता रहा है अतः बीजेपी तथा उससे सम्बद्ध संगठन चर्च की इस राजनीतिक भूमिका का विरोध करते हैं। सरना धर्म कोड को लेकर इनके विरोध का एक पक्ष राजनीतिक हानि-लाभ की गणित पर भी टिका हुआ है। यदि सरना को पृथक धर्म का दर्जा दे दिया जाता है तो वर्तमान स्थितियों के आधार पर स्पष्ट है कि इस समुदाय पर चर्च का प्रभाव होगा। यह स्थिति बीजेपी जैसे दक्षिणपंथी दलों के लिए हानिकारक होगी। वही दूसरी ओर विरोध का एक स्वर स्वयं सरना समुदाय के बीच भी सुना जा सकता है। इनके अनुसार ईसाई मिशनरी जिस प्रकार का उत्साह तथा समर्थन प्रदर्शित कर रहे हैं वह अनावश्यक है। सरना का ना तो हिंदू समाज से कोई सरोकार है तथा ना ही ईसाई समाज से। यह एक पृथक अस्मिता है जो आत्मनिर्णय के लिए संघर्षरत है। ऐसे में किसी भी बाहरी व्यक्ति अथवा संगठन का हस्तक्षेप अथवा समर्थन इस समुदाय को स्वीकार्य नहीं है।

पृथक सरना धर्म कोड को लेकर पक्ष-विपक्ष, वास्तविकता-आशंका जो भी हो, इनकी मांग का क्या होगा यह भी अनिश्चित है। परंतु यह निश्चित है कि यदि इस समुदाय को अपनी स्थिति में परिवर्तन लाना है तो इसके लिए तीन सिद्धांतों को मानना आवश्यक हो जाता है – एक, समुदाय के व्यक्तियों में समुदाय के प्रति 'संचेतना' का भाव अनिवार्य है। अर्थात अपने समुदाय के महत्व, उसके प्रति निष्ठा आवश्यक है। दो, समुदाय के सदस्यों में अपनी 'संस्कृति' का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है। तीन, सामुदायिक 'समेकन' किसी भी समुदाय के सुदृढ़ीकरण के लिए अपरिहार्य है। अर्थात अपनी अस्मिता तथा अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सभी का समेकित प्रयास ही एकमात्र विकल्प हो सकता है। संक्षेप में, धर्म तथा राजनीति के दो पाटों के बीच पिसते सरना समाज की समेकित सांस्कृतिक संचेतना ही इस समाज को उन दुश्चक्रों से बाहर निकाल सकती है और यह इस प्रकार के सभी समुदायों के लिए एक सामान्य शर्त है।

टिप्पणियाँ एवं संदर्भ

1. देखें प्रथमा बनर्जी (2016): राइटिंग द आदिवासी: सम हिस्टोरियोग्राफ़िकल नोट्स
2. गुमला जिले में फील्ड वर्क के दौरान सरना मत के अनुयायियों के साथ की गई वार्ता करते समय लोगों द्वारा यह स्वीकार किया गया कि उन्हें बिना उनकी इच्छा के जबरन हिंदू मत के साथ सम्बद्ध किया जाता है, जबकि वे हिंदू नहीं हैं। सरना उनकी प्राचीन पहचान है जिसे राजनीतिक कारणों से स्वीकार नहीं किया जा रहा।
3. जोहार झारखंड के आदिवासियों के लिए प्रकृति की जय के रूप में अभिवादन का प्रतीक है। सरना मत के अनुयायी अपने प्रतीक के रूप में जिस लाल एवं सफ़ेद पट्टीनुमा झंडे का प्रयोग करते हैं उसे स्थानीय स्तर पर तीरा झंडा कहा जाता है। यह झंडा पृथक सरना धर्म कोड के लिए आंदोलन का परिचायक है।
4. दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण). 9 सितंबर 2020
5. श्यामचरण दुबे. (2008). भारतीय समाज. (वंदना मिश्र, अनु.) नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया. पृ॰ 26.
6. झारखंड के अधिकांश गाँवों में वर्तमान में जो ईसाई समुदाय है, उनका मानना है कि उनके पूर्वज अधिकांशतः सरना ही रहे थे। आशीष कुमार शुक्ल (2021), सांस्कृतिक संगठनों द्वारा राजनीतिक लामबंदीकरण: स्वातंत्र्योत्तर भारत में चुनावी राजनीति की परिवर्तनीय प्रकृति का अध्ययन, अप्रकाशित पीएचडी शोध प्रबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय.
7. दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण). 18 सितंबर 2020
8. हिंदू तथा सिख समाज में दलितों की सामाजिक स्थिति एक सी है। इसलिए यह समाज अपने गुरु रविदास के अनुयायी होने के नाते पृथक रविदासिया धर्म का समर्थन करता है तथा आगामी की जनगणना में अपना धर्म रविदासिया अंकित करना चाहता है। आशीष कुमार शुक्ल (2021), पूर्वोक्त.
9. रॉबर्टो एरिक फ्राईकेन्बर्ग. (2008). क्रिश्चियानिटी इन इंडिया: फ्रॉम बिगिनिंग टू द प्रजेंट. न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस. पृ॰ 452
10. रूडोल्फ सी. हेरेडिया. (1995). एजुकेशन एंड मिशन : स्कूल एज़ एजेंट ऑफ एवांजेलाइजेशन. इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. खंड 30 अंक 37. पृ॰ 2332-2340.
11. ऐसा ही एक कानून (झारखंड धर्म स्वतंत्र अधिनियम 2017) झारखंड में लागू किया गया है जिसके अंतर्गत प्रलोभन, कपट या बलपूर्वक मतांतरण नहीं कराया जा सकेता। यदि कोई व्यक्ति किसी स्वेच्छा से मतांतरित सितंबर 2017, झारखंड सरकार द्वारा प्रकाशित।
12. आशीष कुमार शुक्ल (2021), पूर्वोक्त